मानव और सृष्टि का नाता

डॉ० रागिणी प्रेम

बनवासी सेवा आश्रम

मानव और सृष्टि का नाता

MANAV AUR SRISTI KA NATA

लेखिका :
डॉ० रागिणी प्रेम

चित्रांकन :
श्यामकुमार

कंप्यूटर टाईप :
रामनिवास पाण्डेय

प्रथम संस्करण :
५००० प्रतियाँ
२० फरवरी, १९९२

द्वितीय संस्करण :
५००० प्रतियाँ
सितम्बर, १९९९

सहयोग राशि :
पन्द्रह रुपये मात्र

प्रकाशक :
बनवासी सेवा आश्रम
गोविन्दपुर, वाया-तुर्रा, सोनभद्र (पूर्व में मिर्जापुर) उ०प्र० - २३१ २२१

इस संस्करण के सम्बन्ध में

'मानव और सृष्टि का नाता' पुस्तक का दूसरा संस्करण प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष हो रहा है। समाज शास्त्रियों, कार्यकर्ताओं तथा विचारकों ने इस पुस्तक के विषय को सराहा है, और मित्र समाज ने भी खुले मन से पुस्तक का स्वागत किया, इसकी हमें खुशी है।

मानव और सृष्टि का नाता नित नया बनता है, और बिगड़ता भी है। इस नाते पर बार-बार विचार और पुनर्विचार करना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी है। मानव यदि यह अनिवार्यता पूरी नहीं करता तो सृष्टि के साथ उसका विचार व्यवहार असंतुलित होता है। आज पर्यावरण की समस्या इसी असंतुलन का परिणाम है। इस संस्करण में पर्यावरण से सम्बन्धित दो नये अध्याय जोड़े गये हैं और पुस्तक का आकार व आवरण सहित सभी चित्र संशोधित किये गये हैं।

— डॉ० रागिणी बहन

विषय सूची—

१. मानव और सृष्टि का नाता ०५-१०

२. पर्यावरण रक्षा का प्रयोजन ११-१३

३. विज्ञान की प्रगति और आर्थिक, ...१४-२७
सामाजिक विकास की दिशा

४. समय की माँग २८-३०

५. समाज और पर्यावरण ३१-३९

६. ज्ञान संस्कृति और धर्म ४०-४८

मानव और सृष्टि का नाता

सूरज, हवा, आकाश, पानी, जमीन, पहाड़, पत्थर आदि तथा नित्य नया जन्म लेने वाले और नष्ट होने वाले जीव और वनस्पति, सबको मिलाकर सृष्टि बनती है। इसी सृष्टि का एक अंश मानव है।

मानव, वनस्पति और जीव के सृजन और विकास का आधार हैं पाँच तत्व— जमीन, पानी, हवा, आकाश और तेज याने उष्णता और प्रकाश। जीव और वनस्पति के जीवन में जन्म, विकास, प्रौढ़त्व, बुढ़ापा और मृत्यु ये अवस्थांतर स्थितियाँ आती हैं। प्राणी और वनस्पति जिन तत्वों से बनते हैं और जिनके सहारे फूलते-फलते हैं, मरने के कुछ समय बाद वे फिर उन्हीं तत्वों में मिलते हैं। उनका बीच का रूप अदृष्य होता है। नष्ट होने के पहले दोनों अपने जैसे नए जीव को जन्म देते हैं।

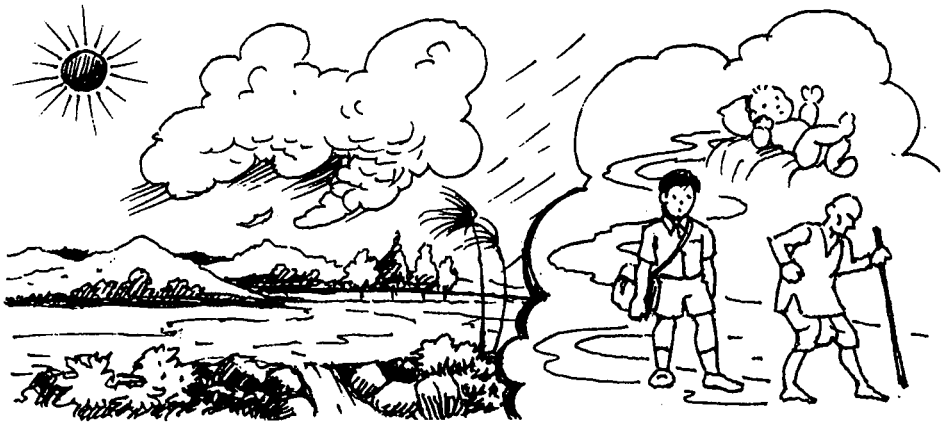

जीव और वनस्पति के जीवन में जन्म, विकास, बुढ़ापा और मृत्यु का चक्र जैसे दिखाई देता है, वैसा ही जीवन-चक्र पत्थर,

मिट्टी, कोयला, तेल, लोहा, ताँबा आदि भूमि में पाये जाने वाले खनिजों के जीवन में भी है। मगर इनकी उम्र इतनी लम्बी होती है कि आदमी उनमें होने वाले परिवर्तनों को देख नहीं पाता और उनको जड़ वस्तु (एक ही रूप में रहने वाली) मानता है।

पानी, हवा का भी अपना चक्र है। आकाश (शून्य) में भी फर्क पड़ता रहता है। विद्वान कहते हैं कि सूरज धीरे-धीरे ठण्डा हो रहा है। क्या पता वह भी गरमी खोने के साथ गरमी पा भी लेता हो और अपने को मर-मिटने से बचाता हो। अन्तरिक्ष

में दिखाई पड़ने वाले चन्द्र, सूर्य, ग्रह-नक्षत्र आदि सभी की शक्ति और प्रभाव (ऋतु-परिवर्तन आदि) सृष्टि का ही एक भाग है। इस सब जानकारी से एक सच्चाई यह सामने आती है कि सृष्टि अपने संसाधनों के आपस के मेल-जोल से पृथ्वी पर तरह-तरह के पशु-पक्षी, पेड़-पौधे, तालाब, पहाड़ आदि का निर्माण करती रहती है और नित्य नया रूप धारण करती है। साथ ही निर्जीव हुई वस्तुओं से उनके बनने में लगे तत्वों को फिर से प्राप्त करके उन्हें भी नया रूप देती है।

पृथ्वी पर कभी-कभी कहीं-कहीं पर उथल-पुथल मचती है। कभी आँधी तो कभी तूफान आता है। कभी बाढ़ आती है, कभी अधिक गर्मी तो कभी अधिक ठण्डक पड़ती है। कभी भूचाल होता है, तो कभी भूगर्भ से लावा निकलता है। मगर अधिकतर सब जगह सामान्य जीवन रहता है।

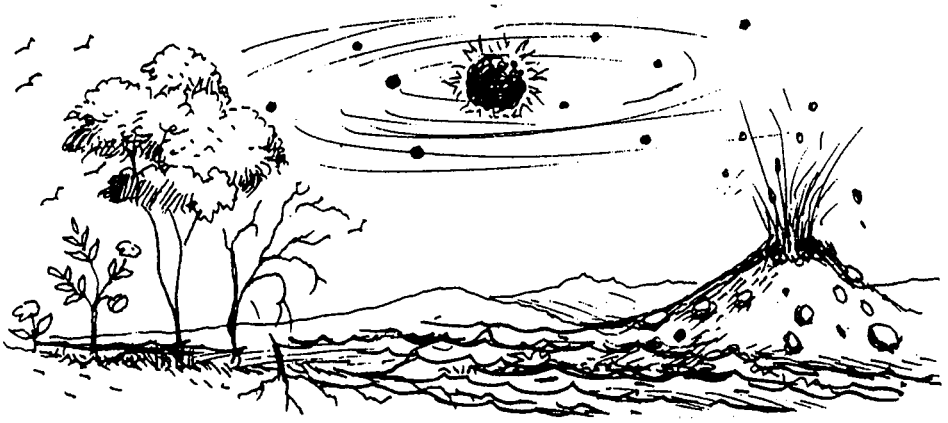

मनुष्य जीव-सृष्टि का बनाया हुआ है। सृष्टि का बनाया यह मनुष्य जीव, सृष्टि में पाए जाने वाले संसाधनों से अपनी एक नई सृष्टि— घर-गाँव, नगर आदि का निर्माण करता है। वह अपने पोषण के लिए अन्न उगाता है। वस्त्र के लिए कपास उगाता है। उससे सूत और सूत से कपड़ा बनाता है। उसे रंगकर, छापकर, सिलकर पहनता है। अपने लिए घर बनाता है। खेती-गृहस्थी आदि कामों के लिए लकड़ी, पत्थर, लोहा, ताँबा, सोना, चाँदी प्राप्त करता है। उनसे अनेक उपयोगी सामान बनाता है। गाय, बैल, घोड़ा जैसे पशु पालता है, उनसे भी मदद लेता है। अपनी बनाई दुनिया में रम जाता है। जीवन जीने में सुख और आनन्द प्राप्ति की अभिलाषा रखता है। उसकी पूर्ति के लिए प्रयत्न करता है।

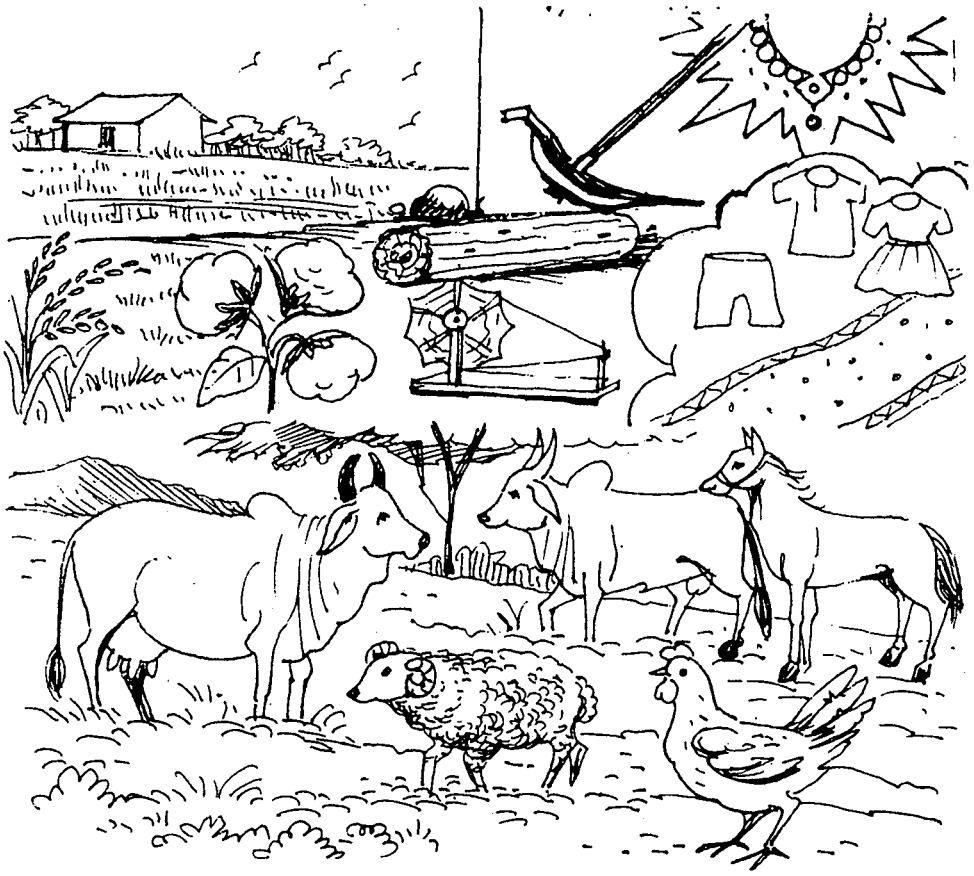

जब-जब मनुष्य अपने जीवन यापन के लिए और सुख भोग के लिए साधन जोड़ता है, तो उसमें सृष्टि के संसाधनों का उपयोग वह करता है। उससे संसाधन घटते हैं। जब कोई चीज जलती है तो हवा में प्राणवायु घटती है, धूआँ बढ़ता है। फसल की सिंचाई करते हैं, तब तालाब या कुएँ का पानी घटता है। कुछ पानी फसल पी लेती है, कुछ भू-गर्भ में रिसता है, तो कुछ हवा में उड़ जाता है। खेत में फसल उगाई जाती है तो मिट्टी का तत्व फसल निकाल लेती है। कुछ तने में रहता है, कुछ फूल-पत्ती और फल गन्ध में पहुँचता है।

लोहा, ताँबा, मिट्टी का तेल आदि सामान भू-गर्भ से निकालने पर वहाँ वे घटते हैं, परन्तु ऐसी यह जो घटती मनुष्य के पड़ोस या परिसर के संसाधनों में उनके उपयोग से होती है, उसकी पूर्ति सृष्टि में, 'प्रकृति' में होती रहती है। वृक्ष धूएँ को हजम करते हैं, प्राणवायु छोड़ते हैं। आकाश में गया पानी वर्षा के रूप में और भूमि में रिसा पानी झरने और नदी के रूप में फिर प्राप्त होता है। पेड़ से झड़ी पत्ती आदि से तथा जीव के मल-मूत्र से, दोनों के निर्जीव शरीर से, वर्षा के पानी में घुलने वाली वायु से और फसल की जड़ों द्वारा पहुँचने वाली हवा के तत्वों से मिट्टी फिर उर्वरा बनती है। इसी तरह वायु, वर्षा और धूप से पत्थर आदि घिसते हैं। उनका मलवा पानी के साथ बहकर दूसरी जगह जमा होता है। उससे नई जमीन, नये पत्थर, पहाड़ों का निर्माण होता है।

मनुष्य जब अपनी सृष्टि बसाता है, तब जिन तत्वों का वह उपयोग करता है, उन तत्वों के भण्डारों के घटने-बढ़ने का विचार अक्सर नहीं करता। वह यह मान लेता है कि यह सृष्टि का

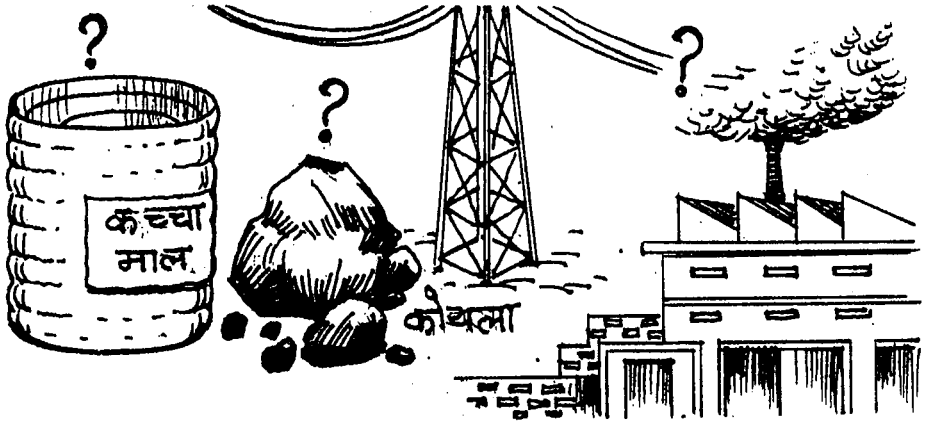

भण्डार कभी कम पड़ ही नहीं सकता। यहीं पर मनुष्य भूल करता है। आमदनी के स्रोत का प्रवाह सतत् बहता है तो जीवन सरल होता है। इस सरलता में तब बाधा पड़ जाती है, जब आमदनी और उसके प्रवाह को बिना विचार किये अधिक खर्च किया जाता है। ऐसी परिस्थिति का सामना अक्सर कर्जे के भरोसे किया जाता है। मगर कर्जा लौटाने की चिन्ता न की जाय, खर्च

न घटाया जाय तो कर्ज तथा अधिक आवश्यकता के भार से ही जीवन बिखर जाता है। यही बात सृष्टि में पाये जाने वाले संसाधनों के स्रोत और उनके उपयोग के बारे में भी सत्य है।

◆

पर्यावरण रक्षा का प्रयोजन

दुनिया में आज 'पर्यावरण' की शुद्धता कायम रखने की खूब चर्चा है।

पर्यावरण है क्या? हमारे चारों तरफ दिखाई देने वाली परिस्थिति— भौगोलिक, वायु मण्डलीय और सामाजिक जो हमे घेरे हुए हैं, उसी को पर्यावरण कहते हैं। सृष्टि में पाये जाने वाले तत्व शुद्ध रहें, पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते रहें, जिससे मनुष्य अपने जीवन की जरूरतें प्राप्त कर सके, जीवन में सुख और शान्ति का अनुभव कर सके यह इच्छा पर्यावरण चर्चा का सन्दर्भ है।

सृष्टि की अपनी स्वाभाविक शुद्धता व संपन्नता के विषय में इतनी चिन्ता दुनिया को आज क्यों हो गई? क्या कहीं पर सृष्टि के संसाधनों में हवा, पानी, मिट्टी, ऊर्जा, आकाश में कोई दोष आ गया है? क्या जीवन में आनन्द और शान्ति का अभाव हो गया है? क्या वे घट गये हैं?

अमेरिका, जर्मनी, जापान आदि धनी देशों को हम विकसित और आदर्श देश मानते हैं। आदर्श इसलिए मानते हैं कि हमें यह बताया गया है कि वहाँ पर भूखा-नंगा आदमी ढूँढने पर शायद कहीं पर मिल जाता है। सबके पास छोटे-बड़े काम हैं। काम की मजदूरी और वेतन के दर भी ऐसे हैं, जिससे जीवन अच्छी तरह बसर होता है। रेडियो, घड़ी, मेज, कुर्सी आदि सामान सबको सुलभ हैं। मोटरें कइयों के पास हैं। बच्चों की पढ़ाई का, बीमार के दवा-दारू का और बच्चे, बूढ़े, अपंग इनकी देखभाल का जिम्मा सरकार ने ले लिया है। सभी को बिजली. पानी आदि सेवाएँ सुलभ हैं। आनन्द ही आनन्द है।

अपने देश की गरीबी के सन्दर्भ में अमेरिका, जापान का यह वर्णन लुभावना है। मगर यह वर्णन सच्चाई का एक पहलू है। वहाँ के जीवन की दूसरी सच्चाई यह है कि उनका पड़ोस 'पर्यावरण' बिगड़ गया है। सृष्टि के मूलतत्व हवा, पानी, मिट्टी, पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े सबमें ऐसा बिगाड़ आया है कि ऐसे पड़ोस के भरोसे भविष्य में आज ही की तरह का जीवन जी पाना असंभव लग रहा है।

धनी देशों की ऐसी यह दशा क्यों हुई? क्या आनन्द का जीवन जीना गलत है?

जीवन में आनन्द का अनुभव करना, आनन्द की इच्छा रखना गलत नहीं है। गलती तब होती है, जब जीवन की जरूरतों की पूर्ति के स्थान पर धन-संग्रह, आलस, चैन और भोग-विलास प्राप्ति के लिए मनुष्य तड़पने और कार्य करने लगता है।

जब मनुष्य बाजार जाकर जरूरत से अधिक सामान खरीदता है। खाने की चीज को चखकर फेंकता है, बजाने वाली चीज को कुछ देर बजाकर छोड़ देता है। वस्तु का दुरुपयोग करता है। एक तरफ चीजें बरबाद होती हैं, दूसरी तरफ गन्दगी फैलती है। अगर वस्तु का उपयोग नहीं किया, और उल्टे संग्रह किया तब भी जरूरतमन्द आदमी को तो वह वस्तु उपलब्ध नहीं होती।

बेहिसाब खर्च और बरबादी से मनुष्य का पड़ोस— पर्यावरण बिगड़ता है। जब यह प्रतिदिन का किस्सा हो जाता है तो धीरे-धीरे जीवन की मूलभूत जरूरतों— हवा, पानी, अन्न, वस्त्र आदि को पूरा करनें में कठिनाई का सामना करना पड़ता है।

◆

विज्ञान की प्रगति और आर्थिक, सामाजिक विकास की दिशा

सौ-सवा सौ वर्ष पहले खेती और गृहस्थी के सारे साधन घर-घर में छोटे औजारों की मदद से मनुष्य निर्माण कर लेता

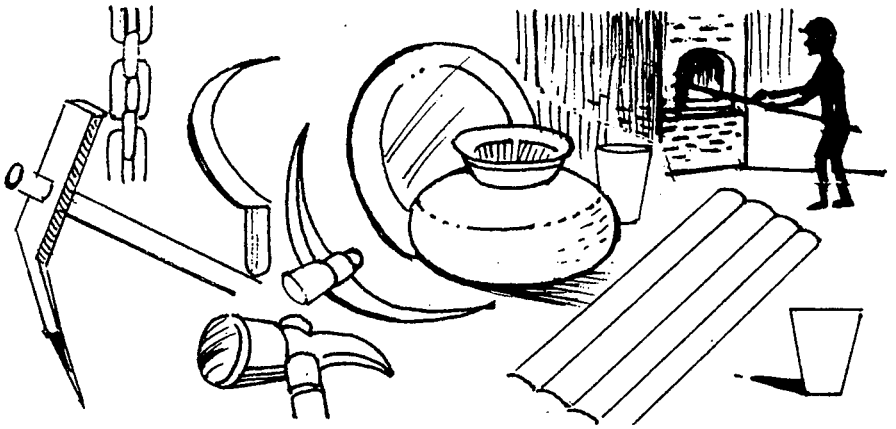

था। विज्ञान की सफलताओं ने भाप, बिजली की शक्ति का परिचय कराया। चालाक दिमाग ने सोचा कि अगर एक ही आदमी दस आदमियों का काम निभाने में सफल हुआ तो उसका मुनाफा बढ़ेगा। उसे वैभव प्राप्त होगा। फिर उस तरह की मशीनों की खोज और रचना होने लगी। सफलता भी मिली। ऐसी मशीनों को हाथों से चलाना सम्भव नहीं था। बिजली, डीजल, पेट्रोल के सहारे ये मशीने चलने लगीं।

घर-घर में छोटे औजार— उपकरणों से जो वस्तुएँ बनती थी वे कपड़ा, बर्तन, कृषि-औजार आदि वस्तुएँ कल-कारखानों

में बनने लगीं। बड़ी मशीनों की देखभाल करने का काम आदमी को मिला।

जब कल-कारखानों की और भाप, बिजली, डीजल और पेट्रोल की शक्ति की खोज हुई, तब भारत जैसे कई बड़े देश यूरोप के छोटे-छोटे देशों के गुलाम थे। यूरोप के कुछ लोगों ने अमेरिका में रहने वालों पर भी अपना राज कायम किया था। अपने कल-कारखानों के लिए पराधीन बने देशों से कच्चा माल सस्ते दर पर ये देश प्राप्त कर लेते थे। इससे गाँव के कारीगरों को कच्चा माल मिलना बन्द हुआ। वे गरीब व लाचार हुए। बड़ी मशीनों की मदद से बड़ी संख्या में वस्तुओं का उत्पादन किया। जो माल तैयार हुआ वह इन देशों की अपनी जरूरत से अधिक था। उसको अपने अधीन देशों में और अन्य देशों में अच्छा मुनाफा लेकर इन्होंने बेचना चालू किया। अधिक मुनाफे से उनके जीवन में वैभव बढ़ा, शान-शौकत बढ़ी, एक की देखा-देखी कईयों ने कारखाने चालू किये। कुछ ही दिनों में इन देशों की आय, जनता का वैभव बढ़ा।

कारखाने वाले देशों में बढ़े वैभव के दर्शन के कारण विश्व समाज में एक भ्रम फैल गया कि जीवन में सुख-शान्ति, वैभव प्राप्त करना हो तो देश में ज्यादा-से-ज्यादा छोटे-बड़े कल-कारखाने खोलना जरूरी है। कारखानों को 'उद्योग' कहा गया। ऐसे उद्योग सम्पन्न देशों को विकसित देश और दूसरों को याने कृषि उद्योग प्रधान देशों को 'अविकसित पिछड़े देश' की संज्ञा प्राप्त हुई।

गुलाम देश स्वतंत्र हो गये। पिछड़ापन दूर करने के फेर में वे भी 'उद्योग प्रधान' याने कल-कारखाने वाले बनने की कोशिश में लगे। कल-कारखानों में पहले जीवन की मुख्य जरूरतों की वस्तुएँ बनती थीं। कल-कारखानों की बहुतायत और आपस की होड़ के कारण फालतू सामान भी बनने लगा। अचार-मुरब्बा,

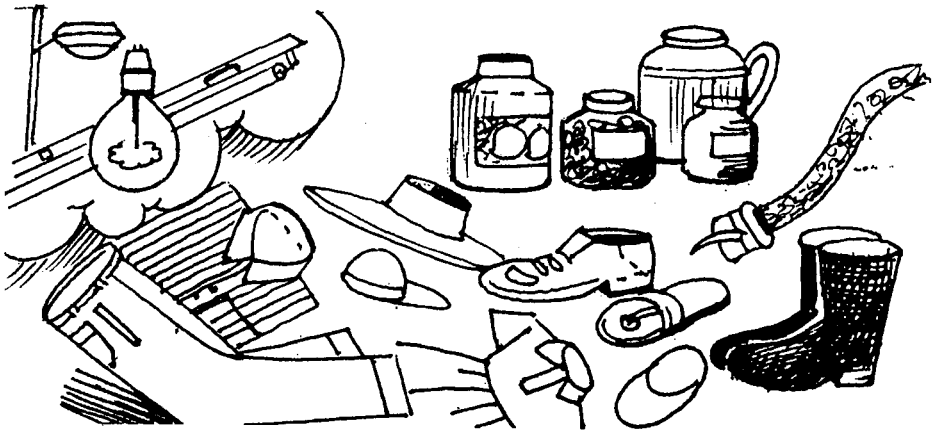

आधा पकाया भोजन, सुरक्षित फल, सब्जी, सूखा दूध, पहनने के तैयार कपड़े, जूता-चप्पल, झाड़ू लगाने वाली वाली मशीन, कप-प्लेट धोने वाली मशीनें, शोभा की वस्तुएँ और कई तरह के सामान बनने लगे। हाथ को देने वाली ऐसी मशीनें बनीं।

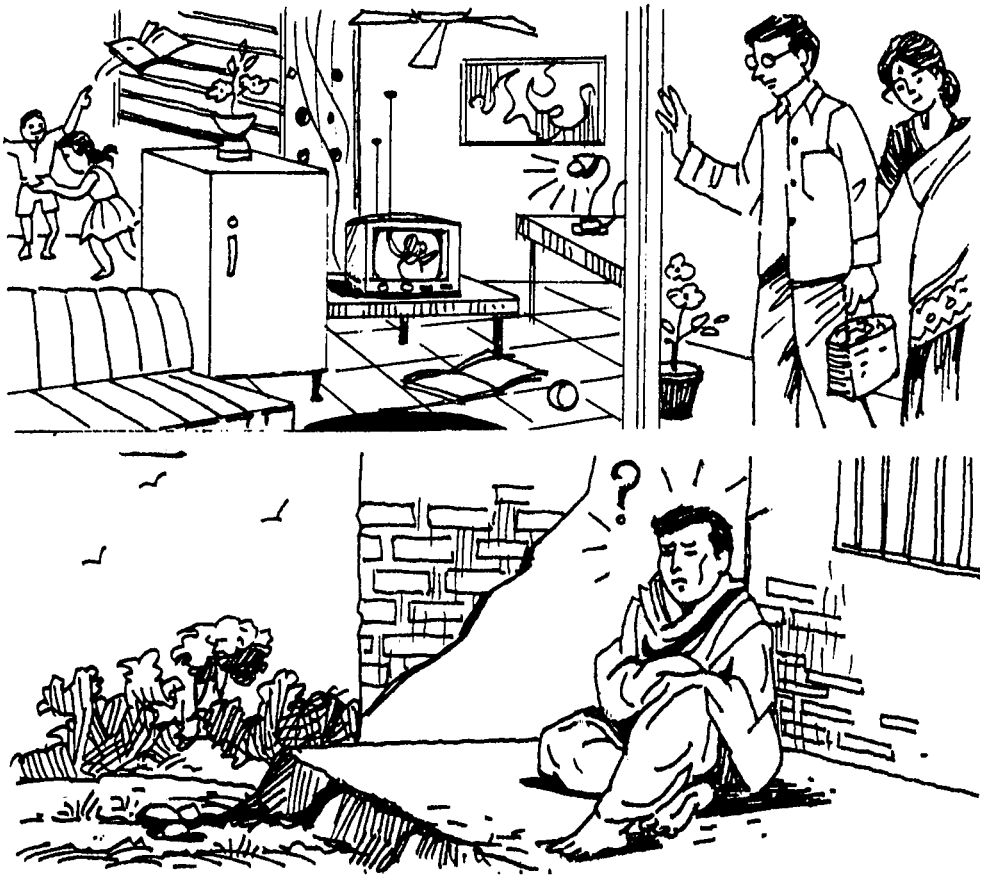

पैर को आराम देने वाली ऐसी सीढ़ियाँ बनीं, जो खुद घूमकर आदमी को ऊपर पहुँचाती हैं। अब मस्तिष्क का काम करने वाली, जोड़ बाकी करने वाली, बच्चों की परीक्षा के पर्चे जाँचने वाली और बीमारी का निदान करने वाली मशीनें भी बन रही हैं।

मनुष्य के लिए मशीन बनाने और मशीन चलाने का काम और आनन्द मनाना शेष रह गया। प्रत्यक्ष में भाग-दौड़ और खर्च बढ़ा आपस का भी प्रेम-व्यवहार कम होने से जीवन में आनन्द घट गया।

कारखानों में प्रतिदिन माल बहुत अधिक मात्रा में उत्पादित होता

है। इसलिए कारखानों को चलाने के लिए एक साथ अधिक मात्रा में कच्चे माल की जरूरत होती है। एक साथ अधिक ऊर्जा की जरूरत पड़ती है। दुनिया में जब कारखानों की संख्या बेलगाम बढ़ने लगी

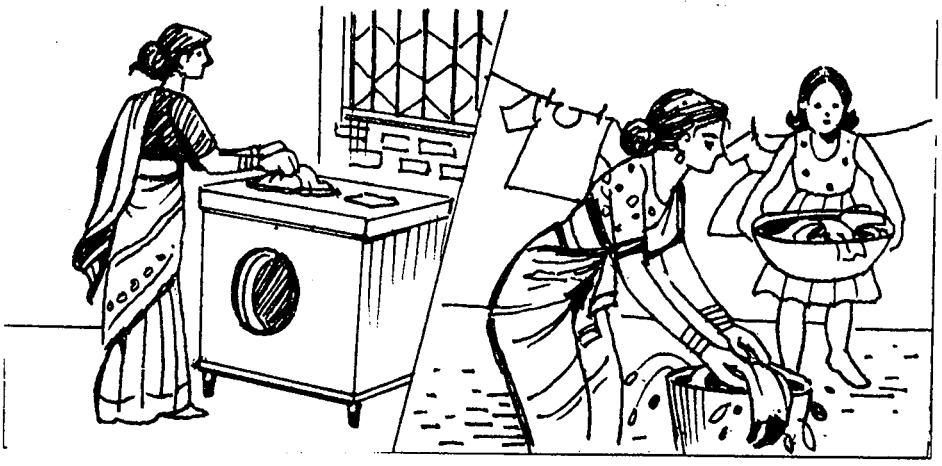

तब कच्चा माल प्राप्त करना और बिजली, कोयला, तेल प्राप्त करना एक समस्या बन गई। आपस में खींचतान, स्पर्धा बढ़ी। स्पर्धा ने

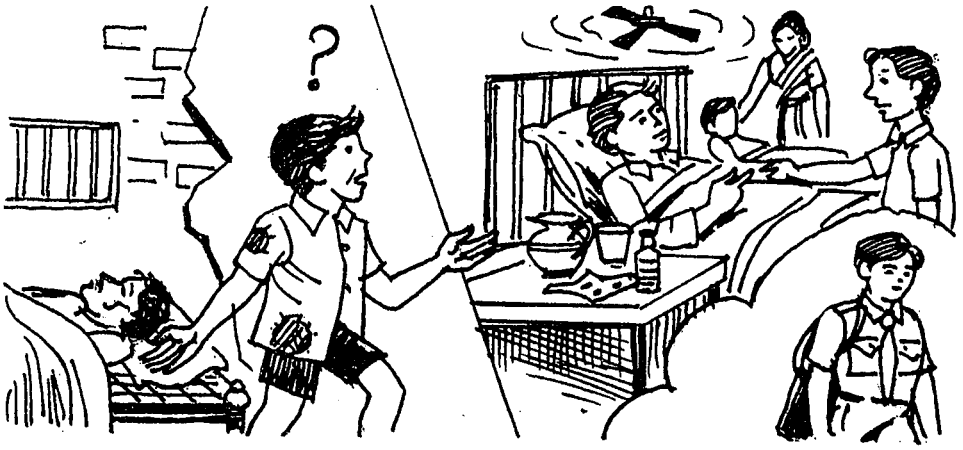

महँगाई को जन्म दिया। वस्तुओं के दाम बढ़े। मगर किसी ने महँगाई कम करने का, मशीन की जगह मनुष्य या पशु को काम देने की बात नहीं सोची। अपने मुनाफे की ही चिन्ता रखी। भाव बढ़ाने के और दूर-दूर व्यापार करने के फेर में पड़ गये।

इतना करने पर भी एक समस्या का निराकरण सम्भव नहीं हुआ। कारखाने से निकली वस्तुओं की उम्र लम्बी होती थी। टूटती-फूटती कम थीं। एक बार किसी ने वस्तु खरीद ली तो फिर से वह कई दिनों, महीनों या वर्षों बाद उसे खरीदता या खरीदना टालकर दुरुस्त करा लेता। जब तक घर इन सामानों से नहीं भरे थे, वस्तुएँ सस्ती थीं, तब तक बिक्री आराम से होती रही। जब घर भर गये, वस्तुओं के दाम बढ़ गये, वस्तुएँ बनाने वाले और बेचने वालों की संख्या अमाप बढ़ गई तो कारखानों की बिक्री घटने लगी। कारखानों को बन्द करना, उनसे कम काम लेना और भी परेशानी की बात थी। इस समस्या से निबटने के लिए कारखाने वालों ने एक उपाय सोचा— चमकदार, सुन्दर, नित्य नये नमूने का, कम दिन चलने वाला चलता माल उत्पादित करने का, वस्तु की दुरुस्ती के लिए उसके पुर्जे बाजार में न बेचने का, जिससे वस्तु दुरुस्त न हो, फेंकी जाय, नई वस्तु खरीदी जाय, कारखानों को काम मिले।

कल-कारखानों का उत्पादन जितना बढ़ता है, उतनी ही अधिक गन्दगी कारखानों से बाहर निकलती है। कारखानों से निकले मलबे

और राख के ढेर पहाड़ों का रूप लेते हैं। काफी सारी जमीन घेरते हैं। कारखानों में से निकलने वाले फालतू रसायन और कुछ अन्य गन्दगी पानी के द्वारा बहाई जाती है। पास में नदी, तालाब, समुद्र हो तो उसमें डाली जाती है। या बड़े-बड़े गड्ढों मे गिराई जाती है। इस तरह काफी सारी जमीन कृषि लायक या बसने लायक नहीं रह जाती। कारखानों में जितनी अधिक ऊर्जा खर्च होती हैं उतना ही धूआँ भी निकलता है। दूर-दूर तक धूआँ फैलता है और हवा को बिगाड़ता है।

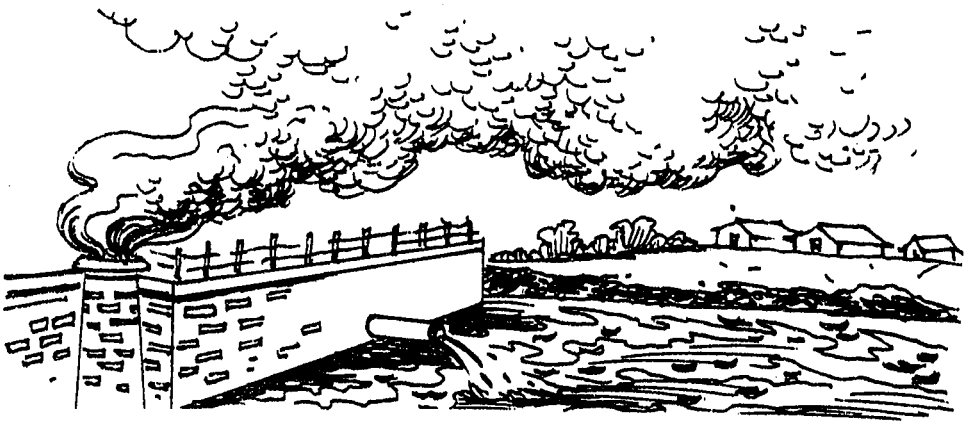

कारखानों से निकलने वाली गन्दगी अधिक मात्रा में प्रतिदिन नदी, तालाब और समुद्र में पड़ने से मछलियाँ, वनस्पतियाँ मरने लगीं। अगर जिन्दा भी रहीं तो जहरीली और विकृत हो गईं। पानी मनुष्य के किसी उपयोग का नहीं रहा। इतना ही नहीं, धूएँ के घुलने के कारण वर्षा का पानी भी शुद्ध नहीं रहा। फसल खराब होने लगी। धूएँ के जमीन पर गिरने से मकान, फसल आदि का नुकसान तो हुआ ही, वातावरण में गरमी बढ़ी और आकाश आवाज और धूएँ आदि से भरने लगा।

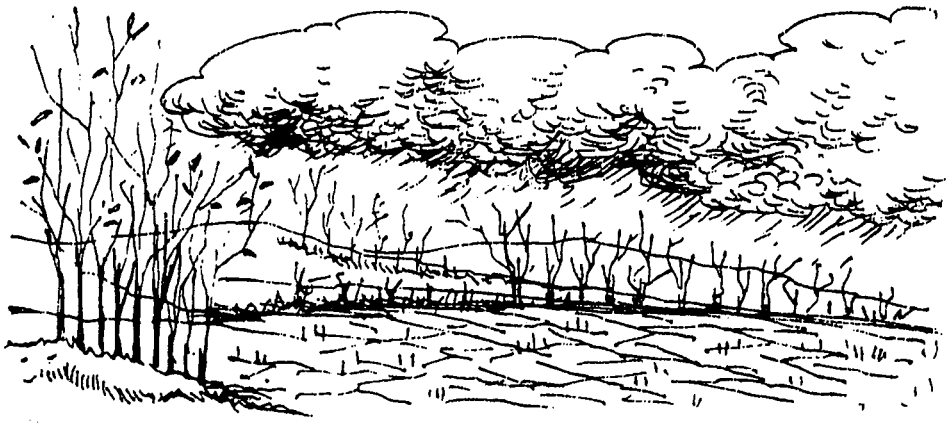

जो हाल हवा-पानी का, वही हाल मिट्टी का हुआ। अधिक उपज के फेर में पड़कर रासायनिक खाद के भरोसे फसल उगाई जाने लगी। यह अधिक उपज मिट्टी की उर्वरा-शक्ति की अधिक खींच के कारण ही संभव थी। एकतरफा खींच के कारण कृषि-भूमि रेगिस्तान बन गई। जो हाल मिट्टी का, वही हाल ऊर्जा का। कल-कारखाने, मोटर-गाड़ियाँ चलाने में और बिजली बनाने में इतनी ऊर्जा शक्ति कोयला, तेल के रूप में समाप्त हुई कि खाना पकाने को और अन्य जरूरी छोटे और महत्वपूर्ण कामों के लिए ऊर्जा-संकट खड़ा हो गया।

इसी तरह बिगड़ी हवा और पानी का बुरा असर वनस्पति, पशु-पक्षी और मनुष्य, सब पर पड़ने लगा। जिस गति से वातावरण गन्दा होने लगा, उस गति से उसे फिर से शुद्ध करना प्रकृति के लिए असम्भव हो गया। संसाधनों के बढ़े खर्च के स्तर पर घटे संसाधनों का पुनः निर्माण सृष्टि नियमों के परे था।

कुल मिलाकर एक तरफ कच्चे माल की खींच के कारण संसाधन तेजी से घटने लगे, तो दूसरी तरफ गन्दगी के चलते

हवा, पानी व मिट्टी जैसे संसाधन अशुद्ध होने लगे। अब आगे जीवन कैसे चले? यह प्रश्न सामने खड़ा हुआ है— धनी देशों में और गरीब देशों में भी।

औद्योगीकरण की नीति के चलते बढ़ते कल-कारखाने और बढ़ते अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार से जो खतरा पैदा हुआ, उसमें जो बातें बढ़ोत्तरी कर रही हैं, वे हैं— शारीरिक श्रम से बचने की मनुष्य की इच्छा, उसका वैभव का लालच, वैर-भाव और परिस्थिति की लाचारी।

शारीरिक श्रम से बचने के फेर में दाढ़ी बनाने, झाड़ू लगाने, बर्तन, कपड़ा साफ करने आदि-आदि कामों के लिए बिजलीचालित मशीनों की खरीद-बिक्री बढ़ी। इन मशीनों के बनाने में और उनका उपयोग करने में ऊर्जा का खर्च एक तरफ बढ़ गया और दूसरी तरफ मनुष्य की अपनी ऊर्जा बेकार हो गई। शरीर की मांसपेशियों को पर्याप्त काम न मिलने से उनकी ताकत घट गई।

शुद्धता और काम की सरलता के नाम पर एक बार उपयोग के बाद वस्तुएँ फेंकने का सिलसिला चल पड़ा। कागज के कप,

प्लेट, नाश्ता प्लेट, रूमाल, गत्ते के डिब्बे और कई चीजें बनने लगीं। फल-फूल, सब्जी, दवा आदि-आदि सामानों को व्यापार की दृष्टि से बन्द करने के लिए लकड़ी के बक्सों की जरूरत प्रतिदिन बढ़ने लगी। इधर व्यापार के लिए पर्चेबाजी, राजनीति की अखबारबाजी और पढ़ाई के लिए किताब-कॉपी का खर्च अमाप बढ़ा। ये सारी वस्तुएँ घिसती कम हैं, फेंकी अधिक जाती हैं। इन आदतों के कारण कूड़े के ढेरों ने पहाड़ों का रूप लिया और फिर कूड़ा उठाने, उसे ढोने, जलाने के लिए ऊर्जा की जरूरत बढ़ गई। दूसरी तरफ कागज और लकड़ी के सामान

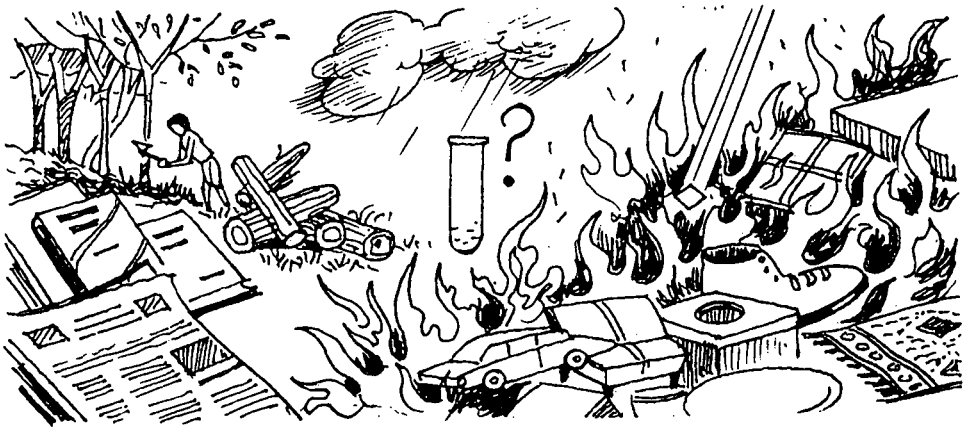

के लिए वृक्ष तेजी से कटने लगे। इस तरह वृक्षों के अन्दर संग्रहीत ऊर्जा नष्ट हुई। साथ ही वृक्षों के द्वारा हो रही हवा की सफाई में बाधा पड़ गई। पानी का चक्र बिगड़ गया। वर्षा कम हो गई। जितनी भी वर्षा हुई, वह मिट्टी-पहाड़ों को काटने और बहाने लगी। मिट्टी की उर्वरता भी खतरे में पड़ गई।

वैभव के लालच के फेर में पड़कर मनुष्य ने अधिकाधिक वस्तुएँ संग्रहीत करना, वस्तुओं का उपयोग सावधानी से अधिक

दिनों तक न कर उन्हें जल्दी फेंकना, बदलना शुरू किया। नई चीज जोड़ने के फेर में बढ़िया लकड़ी की बनी मेज, कुर्सियाँ आदि, असली ऊन के बने गलीचे, लोहे-स्टील आदि के सामान धनी देश का आदमी फेंकने लगा। मोटर-गाड़ियाँ तक धनी देशों में फेंकी जाती हैं। जहाँ कहीं लोग धनी हों और नया-नया माल बाजार में दिखाई दे तो पुराना कौन उठायेगा? यह सारा फेंका सामान जगह-जगह इकट्ठा किया जाता है या जलाया जाता है। ये राख, लोहा आदि के ढेर पहाड़ी का रूप ले लेते हैं। उस पर धूल, मिट्टी जमती है और घास उगने लगती है। इस पहाड़ी पर आगे कभी वृक्ष उगेगा। अन्दर दबा लोहा, ताँबा मिट्टी में मिल जायेगा। सब ठीक होगा, मगर कितने वर्ष लगेंगे इसके लिए?

मनुष्य और उसके द्वारा उगाई फसल और पेड़-पौधों को कुछ जीव-जन्तु, पशु-पक्षी नुकसान पहुँचाते रहते हैं। उनसे मनुष्य कई बार परेशान होता है। इस परेशानी को दूर करने, उससे बचने के लिए उन जीव-जन्तुओं को नष्ट करता है। या उन्हें दूर रखने का प्रयास करता है। सुरक्षा के नाम पर ऐसे जीव-जन्तुओं को मूल-जड़ से नष्ट करने का अभियान विकसित देशों ने कुछ वर्षों से चलाया है।

घास, खर-पतवार न उगे मिट्टी पर, फसलों पर, फूल और फलों को रोग न लगे, फल जल्दी न सड़े, भण्डारों में भरे अनाज को चूहे, कीड़े न खाएँ इसलिए उन पर नियमित रूप से दवा छींटी जाती है। इस प्रयास में मिट्टी को उर्वरा बनाने वाले कीटाणु मर गये,

मधुमक्खियाँ फूल छोड़कर भागने लगीं। अनाज, फल, सब्जी पर पड़ी दवाईयाँ जब सालों साल मनुष्य के पेट में जाने लगीं तो मनुष्य भी परेशान हो रहा है।

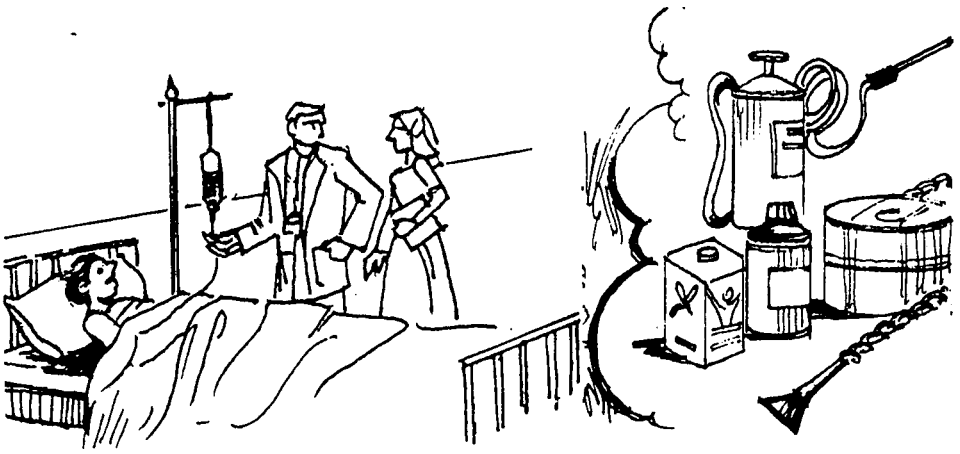

पहले बैल, घोड़ा, गधा आदि पशुओं की मदद मनुष्य अपने काम में लेता था। उनकी जगह मशीनें आ गईं। बेकार बैठे बैलों को काटकर उनका मांस खाना मनुष्य ने शुरू किया। एक साँड़ के भरोसे कई गायों का गर्भाधान करना चालू किया। इसमें जरूरी आवागमन ने ऊर्जा का खर्च बढ़ाया। जब गाय बूढ़ी हो गई तो उसे भी मुनाफे के फेर में पड़कर काटकर लोग खाने लगे। इस तरह मनुष्य- गाय, बैल तथा अन्य जीव-जन्तु सबका वैरी बन गया।

धनवृद्धि और वैभव-संरक्षण के कारण धनी देशों के जीवन में कई और दोषों ने प्रवेश किया है। इन दोषों के मूल में है सरकार अवलम्बन। जब उनकी सरकारों ने जनता के लिए सारी सुविधाएँ जोड़ने का जिम्मा उठाया तो जनता खुश हुई। बच्चे की पढ़ाई, देखभाल में सरकार, रोजगार न मिला तो और बुढ़ापे में सरकार का आधार। दवा, पानी, रोशनी, सड़क आदि की व्यवस्था

सबके लिए सरकार का जिम्मा हो गया। नकद पैसा देना नहीं पड़ा तो लोगों को लगा, बढ़िया मुफ्त सेवा है। मगर असलियत यह थी कि उनके वेतन-मजदूरी से और बाजार में बिक रही वस्तुओं के मूल्य में से सरकार ने पहले ही इन कामों के लिए टैक्स के रूप में पैसा बढ़ा लिया था। सरकार तो अस्त्र-शस्त्र बनाकर लड़ाई लड़ने के लिए भी इसी में से पैसा जोड़ लेती है।

यह लड़ाई की तैयारी किसलिए है? कारखानों में बनने वाले सामानों के लिए कच्चा माल, लोहा, ताँबा, कपास, जड़ी-बूटी, लकड़ी आदि-आदि सामान जिन गरीब देशों से आता है, उन पर अधिकार जमाने की आपसी लड़ाई का यह फेर है! डीजल,

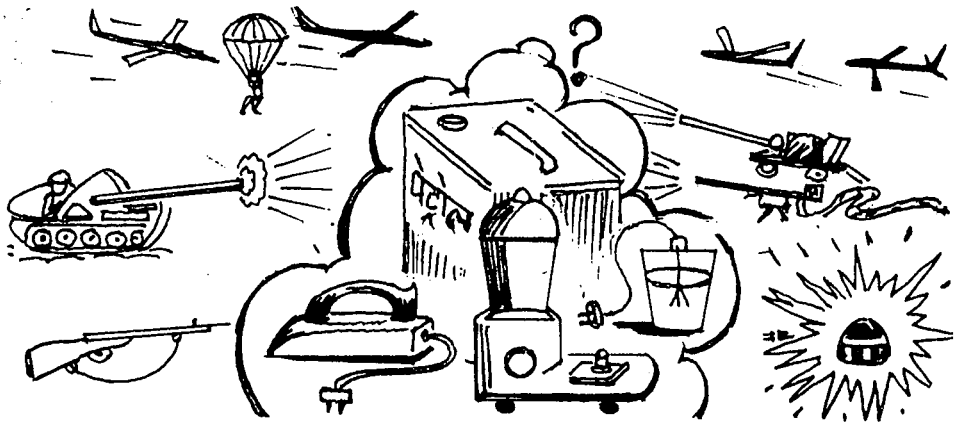

पेट्रोल के भण्डार वाले देशों पर प्रभुत्व जमाने के लिए भी यही लड़ाई है। इस लड़ाई की होड़ में नये-नये विनाशकारी अस्त्र धनी देश बना रहे हैं। इन अस्त्रों को बनाने वाले कारखानों में से और अस्त्रों के भण्डारों में से निकलने वाले अदृश्य किरण हवा को बिगाड़ने के साथ जीव-सृष्टि को भी बिगाड़ने लगे हैं।